गणतंत्र संसदीय बनाम पंचायती

आज़ादी से पहले भारत में राजतांत्रिक व्यवस्था थी। राजा थे और प्रजा थी। राजतंत्र बुरा होता है, गणतांत्रिक व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ। यही सोचकर हमने आज़ाद भारत का संविधान बनाया। 26 जनवरी, 1950 को भारत, संसदीय गणतंत्र हो गया। आज हम भारत को दुनिया का सबसे बड़ा गणतंत्र बताते हुए गौरव का अनुभव करते हैं। प्रश्न है कि यदि गणतंत्र, सचमुच गण यानी लोगों की, लोगों के द्वारा, लोगों के हित में संचालित व्यवस्था है, तो फिर दुनिया के तमाम गणतांत्रिक देशों के नागरिकों को अपने साझा हक़ूक व हितों के लिए आंदोलन क्यों करने पड़ रहे हैं ? नागरिकों को उनके मौलिक कर्तव्य क्यों याद दिलाने पड़ रहे हैं ? नागरिक कौन होगा ; कौन नहीं ? यह तय करना, स्वयं नागरिकों के हाथों में क्यों नहीं है ? दूसरी तरफ, यदि राजतंत्र इतना ही बुरा था, तो सुशासन के नाम पर हम आज भी रामराज्य की परिकल्पना को साकार करने का सपना क्यों लेते हैं ? आज भी राजा-रानी वाला देश भूटान, खुशहाली सूचकांक में दुनिया का नंबर वन क्यों है ? आखिरकार, हम ऐसी किसी व्यवस्था को अच्छा या बुरा कैसे बता सकते हैं, जो संचालन भूमिका में अच्छे या बुरे इंसान के आ जाने के कारण क्रमश: अच्छे अथवा बुरे परिणाम देती हो ?

गौर कीजिए कि आधुनिक इतिहास में ग्रीक को दुनिया का पहला गणतंत्र माना जाता है। गणतांत्रिक मूल्यों के आधार पर हुए आकलन में दुनिया के 195 देशों में मात्र 75 देश ही गणतांत्रिक राह के राही करार दिए गए हैं। मात्र 20 को ही पूर्णतया गणतांत्रिक मूल्यों के देश माना गया है। इनमें 14 देश यूरोप के हैं। शेष 55 को त्रुटिपूर्ण गणतांत्रिक चेतना का देश माना गया है। इनमें भारत भी एक है। भारत में शासकीय कार्यप्रणाली और राजनीतिक संस्कृति में बेहतरी की आवश्यकता बताई गई है। अत: विचार तो करना ही होगा कि हम कैसा गणतंत्र हैं और हमें कैसा गणतंत्र हो जाना है ?

राजतंत्र बनाम जैसा गणतंत्र हम
राजतंत्र में राज्य, राजा की संपत्ति होता था। एक राजा द्वारा दूसरे राजा को जीत लिए जाने की स्थिति में, राज्य दूसरे राजा की संपत्ति हो जाता था। गणतंत्र में राष्ट्र, सार्वजनिक महत्व व जवाबदेही का विषय बताया जाता है, किंतु क्या आज सत्ता में आरुढ़ दल, देश को अपनी मनचाही दशा और दिशा में ले जाने की जिद्द में लगे नहीं दिखते ; जैसे देश सिर्फ उन्ही की संपत्ति हो ? क्या सत्ता, सार्वजनिक महत्व की संपत्तियों को भी अपने मनचाहे निजी हाथों को सौंपती नहीं रही ?

राजतंत्र में निर्णय लेने, योजना-क़ानून बनाने और कर तय करने का काम राजा और उसका मंत्रिमण्डल

करता था। लोकतंत्र में भी तो यही हो रहा है। दल आधारित राजनीति में विह्प तो नेतृत्व ही जारी करता है ; बाकी लोग तो संसद में बस, अपने-अपने दल द्वारा तय पक्ष-विपक्ष में हाथ ही उठाते हैं। तय निर्णयों-नीतियों को ज़मीन पर उतारने का काम राजतंत्र में भी कार्यपालिका करती थी। गणतंत्र में भी वही कर रही है। न्याय पहले भी राजा व उसके मंत्रिमण्डल के हाथ था ; अब भी न्यायाधीश, लोकपाल आदि की नियुक्ति जनता के हाथ में नहीं है। लोगों के जीवन-मृत्यु का अधिकार भी लोगों के पास नहीं है। बलात्कारी को यदि मृत्युदण्ड देना है, तो न्यायालय देगा। उसे जीवन या मृत्यु देने का अधिकार आज भी पीड़िता के हाथ में नहीं है। यदि आत्मरक्षा के प्रयासों के दौरान पीड़िता के हाथों बलात्कारी की मृत्यु हो जाए, तो पीड़िता को क़ानूनन सज़ा भुगतनी पड़ती है।... तो फिर राजतंत्र और लोकतंत्र में फर्क क्या है, सिवाय चुनाव के ? तिस् पर भी चुनाव के कायदे, प्रक्रिया, चुनाव घोषणापत्र से लेकर उम्मीदवार तक कौन होगा ; कुछ भी लोगों के हाथ में नहीं।

दुनिया के 36 देशों में संसदीय व्यवस्था है। लोकसभा, लोकप्रतिनिधियों की सभा है। लोकप्रतिनिधियों द्वारा चुनी सभा होने के कारण, राज्यसभा लोकप्रतिनिधियों की उच्चसभा है। तद्नुसार, हमारे सांसदों को संसद में लोकप्रतिनिधि की तरह व्यवहार करना चाहिए। किंतु वे तो दल के प्रतिनिधि अथवा सत्ता के पक्ष-विपक्ष की तरह व्यवहार करते हैं। जहां सत्ता है, वहां गणतंत्रता कहां ? यह तो राजतंत्र ही हो गया न ?

संभवत: जिस गणतंत्र को हमने राजंतत्र का विकल्प समझा था, वह असल में राजतंत्र का ही नया संस्करण है। अंग्रेजी में गणतंत्र को 'रिपब्लिक' और लोकतंत्र को 'डेमोक्रेसी' कहा जाता है। अत: निष्कर्ष रूप में यह भी कहा जा सकता है कि हम संवैधानिक गणतंत्र तो हैं, किंतु लोकतांत्रिक गणतंत्र होने के लिए हमें अपनी चाल, चरित्र और व्यवहार में अभी बहुत कुछ बेहतर करना बाकी है। क्या करें ?

एक सपना आसमानी से ज़मीनी होते जाने का
गौर करें कि संसदीय गणतंत्र, एक छतरी की तरह हो गया है। समय-समय पर आने वाली बरखा रूपी जनाकांक्षा की बूंदें, जिसके धारक प्रतिनिधियों को स्पर्श करती भी हों, तो भिगो नहीं रही। सिर्फ इतना नहीं, बल्कि धारक प्रतिनिधि इस बात के लिए ज्यादा सतर्क रहने लगे हैं कि वे किसी भी तरह भीगने न पाएं। हम, भारत विविध भूगोल, संस्कृति व जीवन शैलियों का देश हैं। एकसमान योजना-परियोजना-तौर-तरीका-तक़नीक को सभी पर लागू करना ; सभी के लिए हितकरी सिद्ध हो ; भारत में यह ज़रूरी नहीं। अत: भारत को एक ऐसे विशाल हृदया निर्मल तालाब की प्रकृति का गणतंत्र होने की ज़रूरत हो ; जिसमें दूर-दूर से आये जल रूपी विविध विचार और समृद्धि प्रयास समा सके ; कई रंग के कमल, मछलियां और अन्य जीव-जन्तु न सिर्फ आवास पा सकें, बल्कि उसकी सुन्दरता व गतिविधियों में योगदान दें।

संभवत: इसीलिए राष्ट्रपिता गांधी ने भारत को संवैधानिक तौर पर संसदीय की बजाय, पंचायती गणतंत्र बनाने का दस्तावेज़ संविधान सभा को सौंपा था। पंचायतीराज विधेयक को संसद में पेश करते वक्त तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भारत के लोगों को अधिकतम लोकतंत्र, अधिकतम सत्ता सुपुर्द कर, सत्ता के दलालों का खात्मा करने की मंशा इभी इसीलिए ज़ाहिर की थी।

उन्होने याद दिलाया था – "जब हम पंचायतों को वही दर्जा देंगे, जो संसद और विधानसभाओं को प्राप्त है ; तो हम लोकतांत्रिक भागीदारी के लिए दरवाज़े खोल देंगे।... सत्ता के दलालों ने इस तंत्र पर कब्जा कर लिया है। सत्ता के दलालों के हित में इस तंत्र का संचालन हो रहा है।...सत्ता के दलालों के नाशपाश को तोड़ने का एक ही तरीका है और वह यह है जो जगह उन्होने घेर रखी है, उसे लोकतंत्र की प्रक्रियाओं द्वारा भरा जाए।... सत्ता के गलियारों से सत्ता के दलालों को निकाल कर, पंचायतें जनता को सौंपकर, हम जनता के प्रतिनिधियों पर और ज़िम्मेदारी डाल रहे हैं कि वे सबसे पहले उन लोगों की तरफ ध्यान दें, जो सबसे करीब हैं; सबसे वंचित हैं; सबसे ज़रूरतमंद हैं।.... हमें जनता में भरोसा है। जनता को ही अपनी किस्मत तय करनी है।"

73वें-74वें संविधान संशोधन ने पारित होकर दर्जा भी दिया और ज़िम्मेदारी भी डाली। मोदी सरकार द्वारा शुरु 'ग्राम पंचायत विकास योजना' ने भी एक खिड़की खोली है। संसदीय मतलब आसमानी, पंचायती मतलब ज़मीनी गणतंत्र; किंतु हम, भारत के नागरिक आज भी यह फर्क हासिल करने को प्रेरित नहीं दिखाई दे रहे। हम, आज भी आसमानी गणतांत्रिक व्यवस्था की ओर ही ताक रहे हैं। हमें हर ज़रूरत की पूर्ति के लिए सरकार के समक्ष मांग का कटोरा लेकर ताकने की आदत जो डाल दी गई है। पंचायती गणतंत्र के सपने को ज़मीन पर उतारने से हिचकिचाहट, आज भी राज्यों के पंचायतीराज अधिनियम में साफ दिखाई दे रही है। एक ओर तारीख-पे-तारीख के खेल में खिंचते मुक़दमों से हैरान-परेशान अवाम ; दूसरी ओर अनेक ने न्याय पंचायती व्यवस्था को लागू नहीं किया ; एक प्रदेश की विधायिका ने लागू को ही मिटा दिया ! सत्ता पाकर गांव का प्रधान, पंच और ग्रामसभा में बंट जाना। इस सत्ता-चरित्र से उबरे बगैर पंचायती गणतंत्रता की ओर बढ़ना असंभव है और आर्थिक साम्राज्यवाद के खतरों से अंतिम जन को बचाना भी।

पंचायती मतलब न सत्ता, न प्रजा

गौर करें कि यहां पंचायती का मतलब यह नहीं कि प्रभाव तो गांव में होना है ; सोचने, योजना बनाने और क्रियान्वयन के तरीके कहीं और...केन्द्र में तय हों। इस पर भी घोषणा और अपेक्षा की लोगों को सहभागी बनाना है। यह तो सिद्धांतत: उलट बात है। यही तो हमारे संसदीय गणतंत्र में कमी है। हमें एकमत होना होगा कि पंचायती का मतलब, केन्द्र से सोची और उतारी गई योजनाओं को क्रियान्वित करने वाली एजेन्सी हो जाना नहीं है। पंचायती मतलब सत्ता का प्रधान-पंच के हाथ में आ जाना भी नहीं।

आईए, हम इससे आगे सोचें। अतीत में झांकें।

पंचायती का मतलब परंपरागत् पंचायती ; जहां कोई सत्ता नहीं, कोई प्रजा नहीं। कार्य विशेष के लिए बैठी सभा, कार्य सम्पन्न होने के साथ ही विसर्जित हो गई। गांव की आय में किसका कितना अंश... गांव के पुरोहित-कारीगर का कितना ; व्यवस्था संचालकों को कितना ? सब कुछ परम्परा से तय था। अंश प्राप्तकर्ता को मांगने नहीं आना पड़ता था। अंश को एकत्र करना ; उसके प्राप्तकर्ता तक पहुंचाना भी गांव द्वारा तय ग्रामणी का काम। नेतृत्व से लेकर निर्णय तक सभी कुछ सामिलात, सर्वसम्मत्, सम्भावी, स्वावलम्बी, न्यायप्रिय।

पंचायती लोकतंत्र का मतलब, अपने बारे में खुद सोचने, खुद नियोजित करने और खुद ही उसका क्रियान्वयन करने वाली व्यवस्था। क्रियान्वयन करने वाले हाथ, जवाबदेही, संसाधन भी उसी स्थान के हों, जिस भूगोल पर उसका सीधे-सीधे प्रभाव होना है ; चाहे फिर वह गांव हो या नगर। यही तो असली आज़ादी थी ; असली स्वराज।

आखिरकार, यही तो वह व्यवस्था थी, जिसे भारत की सुख, समृद्धि और स्वतंत्रता का अधिकतर श्रेय देते हुए ब्रिटिश गर्वनर चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा था – "ये गांव समाज छोटे-छोटे ऐसे प्रजातंत्र हैं, जिन्हे अपनी आवश्यकता की लगभग हर वस्तु अपने ही भीतर मिल जाती है ; जो विदेशी संबंधों से लगभग स्वतंत्र होते हैं। ये ऐसी परिस्थितियों में भी टिके रहते हैं, जिनमें दूसरी हर वस्तु का अस्तित्व मिट जाता है।"

क्या हम ऐसे स्वावलम्बी-स्वराजी लोकतांत्रिक गणतंत्र बनाने की दिशा में अग्रसर हों ? एक गणतंत्र के रूप में भारत सात दशक पूरा करना जा रहा है। आइए, 72वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर हम, भारत की जनता इस पर विचार करें।

अरुण तिवारी
146, सुन्दर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-110092
amethiarun@gmail.com
9868793799